सुनील मिश्र

गूपी गाइन बाघा बाइन

बच्चों के लिए अच्छा सिनेमा उपलब्ध हो सके इसलिए कभी पूर्व प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपने समय के श्रेष्ठ फिल्मकारों से आग्रह किया था कि बच्चों के लिए वे कम से कम एक फिल्म अवश्य बनाएँ। उनको लगता था कि बड़े निर्माता, निर्देशक और अभिनेताओं को अपनी आय का एक छोटा-सा हिस्सा बच्चों के लिए एक अच्छी और प्रेरक फिल्म बनाने में लगाना चाहिए। इस क्रम में *दो आँखें बारह हाथ*, *बूट पॉलिश* और *जागृति* जैसी अविस्मरणीय और यादगार फिल्में बनीं। इसी तरह की अपील नफीसा अली ने भी की थी जब वे दो साल पहले बाल चित्र समिति की अध्यक्ष बनीं थीं। उस अपील का आज के सिनेमा पर कितना असर हुआ, पता नहीं! आमिर खान ने *तारे ज़मीं पर* बनाकर एक पहल की है। इस फिल्म के लिए उनको शुक्रिया।

बच्चों के लिए हिन्दी में अच्छे सिनेमा का अकाल-सा है। एनीमेशन फिल्में बन रही हैं। लेकिन कोरा रोमांच न जाने कितना असरदार है, कारगर है? वैसे समय-समय पर अलग-अलग भाषाओं में बच्चों के लिए बेहतरीन सिनेमा बना है। भाषाई सिनेमा में हमारे सामने बहुत-से फिल्मकार और बहुत-सी फिल्में हैं। उन्हीं में से एक फिल्म *गूपी गाइन बाघा बाइन* की चर्चा हम यहाँ कर रहे हैं।

गूपी गाइन बाघा बाइन सत्यजीत राय ने अपने बेटे संदीप की इच्छा, आग्रह और ज़िद पर बनाई थी जब वे बहुत छोटे थे। सत्यजीत राय बांग्ला सिनेमा के महान फिल्मकार हैं। उन्होंने श्रेष्ठ तथा कालजयी फिल्में बनाईं। सत्यजीत राय को भारत रत्न और आस्कर से सम्मानित किया गया है।

कहानी गूपी और बाघा की...

गूपी गाइन बाघा बाइन का निर्माण 1968 में हुआ। यह फिल्म दो बेसुरे और मानसिक रूप से चुनौती झेल रहे साफ दिल कलाकारों की दिलचस्प कथा है। इनमें से एक किसान का बेटा गूपी है जो गाता है और बाघा बजाता है। गूपी का सपना एक बड़ा गायक बनने का है मगर उसकी आवाज़ से कस्बे और शहर को बड़ी बाधा पहुँचती है। खासकर राजा को गूपी के गाने से बड़ी चिढ़ है। इसी प्रकार बाघा ढोल बजाने वाला है जिसके ढोल बजाने से पूरा वातावरण आतंकित हो उठता है। लेकिन उसका भी सपना एक बड़ा वादक बनने का है इसलिए किसी की परवाह किए बगैर वो अपना काम करता है। नतीजा यह होता है कि दोनों को ही उनके राज्यों से देश निकाला दे दिया जाता है। गूपी बेचारा गधे पर बैठकर जंगल में भटकने लगता है जहाँ पर उसे बाघा मिलता है। संयोग से दोनों भटकते-भटकते एक ही जगह पर थककर चूर होकर बैठ जाते हैं।

यहीं पर दोनों की दोस्ती होती है। आपस में वे अपनी-अपनी रुचियों के बारे में बातें करते हैं। दोनों को रात में

डर लगने लगता है। डर से ध्यान हटाने के लिए वे जंगल में पेड़ के नीचे बैठकर अपना संगीत शुरू करते हैं। गूपी गाने लगता है और बाघा बजाने लगता है। कमाल की बात यह है कि जिस संगीत की वजह से उनको देश निकाला मिलता है वही संगीत भूतों और उनके सरदार को खूब भाता है। वे रात में जंगल में नाच रहे होते हैं। भूत दोनों को तीन वरदान दे जाते हैं। एक वरदान है, मनचाहे कपड़े और खाना प्राप्त होना, दूसरा वरदान है, ऐसी संगीत दक्षता हासिल कर लेना कि सुनने वाला सम्मोहित हो जाए और तीसरा वरदान है, जादुई चप्पलें मिलना जिनसे जहाँ चाहें वहाँ पहुँचा जा सके।

गूपी और बाघा का जीवन बदल जाता है। वे पड़ोस के राज्य में पहुँचते हैं और राजा को प्रभावित करते हैं। राजा शत्रु राजा को जीतना चाहता है। गूपी और बाघा परस्पर शत्रु राजाओं का हृदय परिवर्तन करने में कामयाब होते हैं। दोनों राजाओं में दोस्ती हो जाती है।

गूपी-बाघा के बहाने

गूपी गाइन बाघा बाइन, एक खूबसूरत-सी फिल्म है जिसे देखना बहुत अच्छा लगता है। हमारे सामने मन को सच्ची और सकारात्मक लगने वाली कथा होती है जिसे देखते हुए शत्रु, शत्रु नहीं लगते, भूत डराते नहीं और बुरे माने जाने वाले आदमी सज्जन नज़र आते हैं। सत्यजीत राय ने इस फिल्म को बड़ी खूबसूरती से बनाया है। हम चूँकि ऐसी दुनिया में रहते हैं जहाँ हमारे आसपास गहरे मनमुटाव, शत्रुताएँ, दुर्घटनाएँ, तनाव, मुश्किलें हैं, इसलिए हमें यह फिल्म प्रभावित करती है। इस फिल्म को देखते हुए डर नहीं लगता, हम आतंकित नहीं होते बल्कि कई बार हमें इस फिल्म का हिस्सा होने का अहसास होता है। इस खूबी के साथ यह फिल्म बनी है। इस फिल्म का अँग्रेज़ी संस्करण *द एडवेंचर्स ऑफ गूपी एण्ड बाघा* के नाम से बना था। इसे विश्व के अनेक देशों में सराहा गया। इस फिल्म का संगीत भी सत्यजीत राय ने ही तैयार किया है। जिसमें विशेष रूप से घटम, मृदंगम, घुँघरुओं के गुच्छों का अच्छा प्रयोग किया गया है।

गूपी गाइन बाघा बाइन को श्रेष्ठ निर्देशन, राष्ट्रपति का स्वर्ण व रजत पदक सहित दुनिया के कई देशों में अनेक पुरस्कार मिले थे। चकमक

चित्र - जितेन्द्र ठाकुर

बाघ मामा के साथ के अनुभव - सत्यजीत राय

फिल्मों में जानवरों से मनचाहा काम लेना बहुत मुश्किल होता है। *पाथेर पाँचाली* में आपने भोलू (कुत्ते) का काम देखा ही होगा। पर अगर अभिनेता बाघ हो तो???

इस सिलसिले में *गूपी गाइन बाघा बाइन* के मज़ेदार किस्से हैं। गूपी और बाघा रात में डरे-डरे से घूम रहे होते हैं। अचानक सामने से बाघ आता दिखाई देता है। वे डर के वहीं जम जाते हैं। लेकिन बाघ को कोई फर्क नहीं पड़ता। वो राजसी चाल से आता है और घूमता हुआ चला जाता है।

यह तो सीन था! लेकिन इसे शूट कैसे किया जाए? बाघ कहाँ से लाया जाए? सरकस से! हाँ, यही सूझा। उन दिनों कलकत्ते में भारत सरकस चल रही थी। हमने उनके मैनेजर को फोन लगाया और सीधे जा पहुँचे उनके कमरे (सॉरी टैंट) में। उन्होंने धीरज से हमारी बात सुनी और रिंग मास्टर श्रीमान थोराट से मिलने को कहा। सब कुछ तय हो गया। एक घण्टा शूटिंग का और दो दिन आने-जाने का। लेकिन दिमाग में एक कीड़ा कुलबुला रहा था। जंगल में बाघ को खुला छोड़ना ठीक होगा? थोराट जी भी इसे लेकर आश्वस्त नहीं थे। तो क्या सारी प्लानिंग चौपट?

नहीं, थोराट जी के पास इससे निपटने का एक आइडिया था। "मैं रहूँगा न साथ-साथ।" लेकिन दिक्कत यह थी कि अगर ये महाशय बाघ के साथ-साथ बने रहेंगे तो गूपी-बाघा डरेंगे कैसे? नहीं..नहीं यह नहीं चलेगा।

फिर तय हुआ कि बाघ के गले में एक पतली मगर मज़बूत तार बाँध दी जाएगी। आइडिया बढ़िया था। तार कैमरे में दिखेगी भी नहीं।

हम तय दिन तय जगह पर पहुँचे। इस अद्‌भुत नज़ारे को देखने हमारी यूनिट के कोई 25 लोग और आसपास के कई लोग जमा हो गए। श्रीमान थोराट एक बड़े से ढँके हुए पिंजरे के साथ मौजूद थे। कवर उठाया तो मैं हैरान रह गया। वहाँ एक नहीं दो-दो बाघ थे। "मुझे लगा अगर एक से काम न बने तो दूसरा काम आ जाएगा," थोराट जी गर्व से बोले। मुझे यह तनिक न भाया। जी चाहा पूछूँ कि अगर दूसरे से भी काम न बने तो?

खैर हमने कैमरा जमाया। इस तरह कि बाँस का झुरमुट बिलकुल सामने हो। लोगों से कैमरे से दूर रहने की गुज़ारिश की। हमें और गूपी-बाघा को तो बाँस के झुरमुट और कैमरे के पास होना ही था ताकि कम से कम एक सीन में तो ये लोग बाघ के साथ हों ही। सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं। लोहे का खूँटा गड़ चुका था जिससे तार को बाँधा जाना था।

पिंजरे का गेट खोला गया। बाघ को आवाज़ लगाई गई। बाघ ने भी क्या तो फुर्ती से छलाँग लगाई। लेकिन यह क्या! बजाय इसके कि वह ठाठ से, राजसी चाल चलता हुआ आता वो तो खिलंदड़ों की माफिक कूदने-फाँदने-लोटने लगा। और उसके साथ घिसट रहा था तार पकड़े उसका प्रशिक्षक। कैमरा मुँह बाए बाँस को ताक रहा था जहाँ राजा जी आने का नाम नहीं ले रहे थे। आखिरकार जब वे शान्त हुए जब जाकर कुछ शॉट लिए जा सके। थोराट जी ने बताया कि इस बाघ का जन्म सरकस में ही हुआ है। इसे कभी पिंजरे के बाहर तक नहीं छोड़ा गया है। इसीलिए शायद जंगल में अपने प्राकृतवास को देख बौरा रहा है।

शूटिंग खत्म होने के बाद बाघ को वापस लॉरी में रखे पिंजरे में जाना था। प्रशिक्षक ने कहा, "ऊपर"। इस पर उसे स्टूल पर कूदकर अन्दर जाना था। पर श्रीमान थोराट के बार-बार "ऊपर" कहने पर भी बाघ बाँस के पास बैठा मज़े से उसे के पत्ते खाता रहा।

जहाँ प्रशिक्षक उसके इस अप्रत्याशित व्यवहार से परेशान था, हम बड़े निश्चिन्त हुए। जो बाघ बाँस की पत्तियाँ खाने में मज़े ले सकता है वो हमें क्या खाएगा? मौके का फायदा उठाकर मैंने कैमरा उठाया और बाघ के इस गैर-बाघीय व्यवहार को कैमरे में कैद करने लगा। ज़ाहिर है मैं उसके काफी पास था। सब ठीक-ठाक चल रहा था कि अचानक राजा जी उठे और कोई 6 फुट लम्बा डग भरकर पिंजरे में जा बैठे। और काफिला चल दिया।

यह न समझना कहानी यहीं खत्म हुई। कलकत्ता पहुँचकर जो बाघ वाले सीन देखे तो धक से रह गए। कैमरे ने ठीक से काम नहीं किया था सो सब कुछ काला-काला सा दिख रहा था। तो क्या सीन छोड़ा जाए?? नहीं भाई। फिर भारत सरकस, फिर लॉरी, फिर बाघ, फिर शूटिंग। लेकिन इस बार जगह बदली थी। गाँव था वही *पाथेर पाँचाली* वाला। चकमक

प्रस्तुतिः सत्यजीत राय की किताब *चाइल्डहुड डेज़ - अ मेमॉयर* से